चेतना विकास मूल्य शिक्षा

कक्षा – 4

संरक्षण एवं मार्गदर्शन

ए. नागराज
प्रणेता
मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद)

लेखन
साधन भट्टाचार्य
श्री राम नरसिम्हन
कुमार संभव, सोम त्यागी
बी.आर. अग्रवाल, अंजनी कुमार
श्रीमती सुवर्णा योगेश

प्राक्कथन

मानवीय शिक्षा का प्राक्कथन एक आवश्यकता के रूप में हमें महसूस हुआ, क्योंकि यह पाठ्यपुस्तिका का उपक्रम पहली कक्षा से प्रस्तुत किया गया है। क्रम से परंपरागत होने तक सिलसिला बना ही रहेगा। सह अस्तित्व अपने स्वरूप में व्यापक वस्तु में ही सम्पूर्ण एक–एक वस्तु जैसा परमाणु, अणु, ग्रह, गोल, सौर व्यूह, आकाश गंगा। डूबी, भीगी, घिरी होने के आधार पर नियंत्रण, क्रियाशीलता और उर्जा सम्पन्नता प्रत्येक वस्तु में नित्य प्रमाण के रूप में देखा गया है। साथ में यह भी समझा गया है कि व्यापक वस्तु में समाहित सम्पूर्ण एक–एक वस्तुओं की अविभाज्यता नित्य वर्तमान है। यही सह–अस्तित्ववादी विश्व–दृष्टिकोण का मूल रूप है। ऐसे सह अस्तित्व नित्य प्रभावी रहना स्वाभाविक है।

सह अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए प्रथम कक्षा से अर्थात् अक्षराभ्यास से चलकर शब्दों का अभ्यास और शब्दों के अभ्यास से अर्थ का अभ्यास, अर्थों के अभ्यास के तात्पर्य में हर शब्द किसी वस्तु का, क्रिया का अथवा फल–परिणाम का नाम है। ऐसा अर्थ इंगित होना ही शब्द से अर्थ समझा गया है इसलिए अर्थबोध करने के उपक्रम में शिक्षा विधा को अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्रस्तुत हुआ। यह पठन विधि से अर्थ बोध तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसे प्रस्तावित करना इसलिए आवश्यक समझा गया कि मानव सह–अस्तित्व विधि से ही समुदाय चेतना से मानव चेतना में संतुलित होना है। मानव चेतना का प्रयोजन, समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक जीने का प्रमाण है। इससे अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की पहचान होना स्वाभाविक है।

यह तो सटीक है कि विगत विधि से जो पाठ–पठन का लक्ष्य था, उसे आगे पढ़ाने के जिन भी उपायों को खोजा गया है, वह सब सार्थक है, मूलतः मानवीय शिक्षा के अभाव वश सामुदायिकता, मतभेद, साम, दाम, दण्ड, भेद, परस्पर समुदायों की निहित अतिशोधों का विश्वास प्रयोग हो चुका है। इन सब अभिशापों से मुक्ति पाने की अकांक्षा मानव में निहित होना भी पाया गया। इसलिए मानवीय शिक्षा का निश्चयीकरण आवश्यक समझा गया है। इसे क्रियान्वयन करने की क्रमविधि से प्रस्तुत किया। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन प्रधान उद्देश्य को सार्थक बनाने के क्रम में प्रथम कक्षा से ही सूत्रपात रूप में मूल्य संबंधी और शरीर के अवयव संबंधी शब्दों का अधिकतम चयन किया गया है। साथ में परस्पर मानव संबंधों से संबंधित शब्दों का चयन किया गया है। इसे हर बालक अथवा किशोर आसानी से पहचान पायेगा। ऐसी हमारी स्वीकृति है। यह सार्थक और सफल होना पाया गया है। भविष्य में मूल्यांकन होता रहेगा। इस विधि से सर्व शुभ होने की कामना है।

ए. नागराज
प्रणेता
मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद)
श्री नर्मदाचंद, भजनाश्रम, अमरकंटक
जिला अनूपपुर (मध्यप्रदेश)

भूमिका

विज्ञान शिक्षा से छात्र–छात्राओं एवं युवाओं में तर्क शक्ति का अभूतपूर्व विकास हुआ है। जिससे आस्था (बिना जाने मान लेना) की प्रवृत्ति में कमी आई है। अतः परंपरागत शैली जिसमें यह करो, यह न करो अथवा ''ऐसा जीना चाहिए'' आदि उपदेश विद्यार्थियों में अब प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। ऐसे में परिवारोन्मुखी, समाजोन्मुखी शिक्षा के सार्वभौम स्वरूप पर चिंतन की आवष्यकता है।

यूनेस्को .... द्वारा अपेक्षित शिक्षा के चार स्तम्भों में मुख्य स्तम्भ .... अर्थात् ''साथ–साथ जीना सीखना'' पर जोर दिया है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने मानव मूल्य शिक्षा हेतु निम्न मार्गदर्शन दिया है –

1. पाठ्यक्रम किसी भी प्रकार के अंधविष्वास, कर्मकाण्ड व पूजन पद्धति से मुक्त हो।
2. पाठ्यक्रम रहस्यवाद, सम्प्रदायवाद व व्यक्तिवाद से मुक्त हो।
3. पाठ्यक्रम ''करो न करो'' आदि उपदेश न होकर तर्कपूर्ण हो, तर्कपूर्ण ढंग से इसका प्रयोग एवं विश्लेषण द्वारा परीक्षण कर सकते हो।
4. पाठ्यक्रम को आचरण में प्रमाणित किया जा सकता हो।
5. पाठ्यक्रम दर्शन आधारित हो।

आधुनिक शिक्षा को रोजगारोन्मुखी ही नहीं बल्कि परिवारोन्मुखी, समाजोन्मुखी भी होने की आवश्यकता है, ताकि हर परिवार समाधान, समृद्धिपूर्वक जी सके। समाधान का अर्थ मानव संबंधों में परस्पर तृप्ति एवं प्रकृति के साथ संतुलनपूर्वक जीना है। समृद्धि अर्थात् अभाव–मुक्त जीना इस आशा की पूर्ति के लिए मानवीय मूल्यों के शिक्षक की आवश्यकता महसूस की जाती रही है।

मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद) उपरोक्त सभी कटौतियों को पूरा करता है, जिसका परिचय ''जीवन विद्या शिविरों'' के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। मध्यस्थ दर्शन से विस्तृत चेतना विकास मूल्य शिक्षा मानव में पाँच सद्गुणों को सुनिश्चित करती है :–

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा एवं व्यक्तित्व में संतुलन
4. व्यवसाय में स्वालंबन
5. व्यवहार में सामाजिकता

आज धरती एक गाँव .... हो गयी है। अतः विश्व शांति हेतु वैश्विक नागरिक .... अर्थात् सार्वभौम मानवीय आचरण को पहचानने की आवश्यकता है। चेतना विकास मूल्य षिक्षा के प्रकाष में सार्वभौम मानवीय आचरण, सार्वभौम मानवीय शिक्षा, सार्वभौम मानवीय व्यवस्था, सार्वभौम मानवीय संविधान का व्यावहारिक स्वरूप व्याख्यायित होता है। साथ ही ''मानव में समानता'' व धर्म निरपेक्षता का व्यावहारिक स्वरूप प्रकट होता है जिससे ''मानव जाति एक, मानव धर्म एक'' पूर्वक जीने की राह प्रषस्त होती है।

विश्व के इतिहास में शायद पहली बार हुआ है कि संपूर्ण दर्शन को प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर पहुंचाया गया हो। राज्य शासन ने कक्षा 10 वीं तक अध्ययन करने वाले सभी बच्चों को सहअस्तित्व का महत्व इस दर्शन के माध्यम से सिखाने का निर्णय लिया है। यह पुस्तक इसी प्रयास का एक भाग है। हम आशा करते हैं कि शिक्षक स्वविवेक के साथ इस पुस्तक का उपयोग करके इस महती उद्देश्य की पूर्ति करेंगे। जाहिर है आपके सुझावों का हमें हमेशा इंतजार रहेगा।

नंद कुमार (भा.प्र.से.)
संचालक

लेखकीय

प्रत्येक शिशु जन्म से ही न्यायापेक्षी, सही कार्य–व्यवहार करने वाला एवं सत्य वक्ता होता है, परन्तु न्याय, सही कार्य–व्यवहार एवं सत्य से शिशु अनभिज्ञ रहता है। इन्हें समझने के लिए वह परम्परा पर, मुख्यतः शिक्षा परम्परा पर आश्रित रहता है। इस हेतु आज्ञापालन, अनुसरण, अनुकरण एवं जिज्ञासा सम्पन्न रहता है।

प्राथमिक कक्षा में प्रवेश के पूर्व ही सभी शिशु अपनी मातृभाषा को समझने व बोलने की योग्यता से सम्पन्न होते हैं एवं अपने परिवेश के प्रायः सभी कार्य–व्यवहार व वस्तुओं को पहचानते हैं। अपने परिवेश के अनुसार मान्यता व विचार संपन्न रहते है।

विद्यालय में प्रवेश के साथ शिक्षा में अक्षर, शब्दों एवं अंको को पहचानने व लिखने का कार्य शिक्षा की प्रमुख वस्तु होती है जबकि सभी विद्यार्थी अनेक वाक्यों को बोलने, अनेक वाक्य बनाने में समर्थ रहते हैं। उनकी इस पूर्व योग्यता को बढ़ाने के लिए शिक्षा में स्पष्ट कार्यक्रम का अत्याभाव है। फलतः शिक्षा में पर्याप्त रूचि नहीं बनती। इसी के साथ प्राथमिक स्तर पर स्वयं पढ़कर समझने–सीखने की योग्यता अधिकांश विद्यार्थियों में विकसित नहीं होती है और वे अधिकांशतः शिक्षक पर ही आश्रित रहते हैं। इसे पूरा करना ही शिक्षक की सार्थकता है।

अस्तु विद्यार्थियों की योग्यता के अनुसार मानवीय चेतना विकसित करने हेतु एवं शिक्षकों की सार्थकता प्रमाणित होने के उद्देश्य से 'चेतना विकास मूल्य शिक्षा' के पाठ्यपुस्तकों को लिखा गया है।

हमें विश्वास है यह पुस्तक इन अर्थों को प्राप्त करने में सफल होगा।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा की पुस्तक प्रथम बार लिखी गई है अतः इसमें सुधार की अपार सम्भावनाएँ हैं। विद्वान अध्यापकगणों से इस हेतु सतत् मार्गदर्शन की अपेक्षा है।

लेखकगण

प्रथम संस्करण की भूमिका

चेतना विकास मूल्य शिक्षा पर कक्षा 1 से 5 तक पुस्तक 2009 में लिखी गई।

प्रथम बार पुस्तक लिखने तथा अल्प समय में इसे पूरा करने के कारण व्याकरण संबंधी एवं टंकण संबंधी भूल भी रही। कक्षा 1 से सभी पाठ कविता में हैं एवं कविता में तुकबंदी का अभाव था।

प्रथम संस्करण में शिक्षा की वस्तु को यथावत रखते हुये व्याकरण में सुधार किया गया है एवं कविताओं में तुकबंदी पर थोड़ा ध्यान दिया गया है। कुछ तकनीकी से संबंधित पाठों को हटा दिया गया है।

हमें विश्वास है पुस्तक विद्यार्थियों के लिए सुबोध हेगा।

लेखकगण

अनुक्रमणिका

भाग	पाठ	नाम	पृ. संख्या
1) मानव लक्ष्य	पाठ 1	मानव लक्ष्य	
2) समग्र व्यवस्था	पाठ 2	अस्तित्व	
	पाठ 3	पदार्थ अवस्था	
	पाठ 4	प्राण अवस्था	
	पाठ 5	जीव अवस्था	
	पाठ 6	ज्ञान अवस्था	
3) अखण्ड समाज	पाठ 7	परिवार	
	पाठ 8	मानव संबंध	
	पाठ 9	मानव समाज	
4) सार्वभौम व्यवस्था	पाठ 10	जीवन व शरीर की क्रियाएँ	
	पाठ 11	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना	
	पाठ 12	आवश्यकता	
	पाठ 13	समझना और देखना	
	पाठ 14	न्याय का याचक	
	पाठ 15	आज्ञा पालन	
	पाठ 16	शिक्षा	
	पाठ 17	विधि	
	पाठ 18	मानव शरीर	
	पाठ 19	व्यायाम	
	पाठ 20	पेट की सफाई	
	पाठ 21	दूरगमन	
	पाठ 22	आवर्तनशीलता	
	पाठ 23	ईंधन	

वंदना

वंदना उनकी करें, जिनसे सुशोभित है धरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनसे दिशा हमको मिली, नित मानवीय मार्ग की।
पथ मिला निश्चित हमें थी, कामना जिस मार्ग की।।
कृतज्ञता से सौम्यता की, नित्य आयी निरंतरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनका है चिन्तन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी।
प्रेरणा से जिनकी है, मानव का जीवन सुखमयी ।।
श्रद्धा समर्पित जिनसे आए, मानवीय परम्परा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

सबके सुख की कामना ले, रहती जिनकी कल्पना ।
निकली जिनसे मानवीय पथ, हेतु निश्चित योजना।।
पूज्यता उन हेतु जिनसे, है सुसज्जित वसुन्धरा ।
जिनमें है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

—प्रदीप पूरक, बिजनौर (उ.प्र.)

पाठ – 1

मानव लक्ष्य

मनुष्य का लक्ष्य समझदार बनना है। समझदार बनने पर हमारी जिज्ञासा पूरी होती है और हमें खुशी मिलती है, इसलिए अब तक प्रयास करके मानव ने अनेक वस्तुओं को समझा।

अनेक वस्तुएँ ऑखों से दिखती हैं। हम उन्हें पहचानते और समझते हैं। कई वस्तुएँ हमें ऑखों से दिखती है, परन्तु उन्हें देखकर हम पूरा नहीं समझ पाते। जैसे हमें चन्द्रमा दिखाई देता है। चन्द्रमा को देखकर यह समझ में नहीं आता कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। इसी प्रकार हम दिन–रात को भी देखते है। इसके होने के कारण पर ध्यान देने पर यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी की गति के कारण दिन–रात होता है। पृथ्वी के अक्ष पर घूर्णन गति के कारण दिन–रात होते हैं।

किसी घटना या किसी कार्य के होने के कारण को हम समझ सकते हैं। कारण बदलते नहीं है। हमेशा एक जैसे रहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा कारण को समझ नहीं सकते। सोच–विचार और अध्ययन के द्वारा कारण को समझ सकते हैं। कारण की समझ को समाधान कहते हैं।

समाधान होने पर ही हम अपनी आवश्यकताओं को पहचान सकते हैं। समाधान से ही आवश्यकताओं को पूरा करने की विधि को पहचान पाते हैं और आवश्यकता को पूरा कर पाते है। इसे समृद्धि कहते हैं। समाधान से हम भय–मुक्त होते हैं। समाधान से हिंसक पशुओं और विषैले जन्तुओं से बचने की विधि स्पष्ट होती है। समाधान से हम सभी आपस में अच्छा व्यवहार करते हैं, एक दूसरे को समझते और सहयोग करते हैं। इससे आपस में विश्वास बनता है।

हम विद्यालय में शिक्षकों एवं मित्रों के साथ विश्वासपर्वूक जीते है। सभी साथ–साथ प्रसन्न रहते हैं। इसे हम अभय कहते है।

हम मनुष्य के अलावा वायु, पानी, मिट्टी, अनेक वनस्पति, जीव जन्तु के साथ रहते हैं। इनके बिना कोई भी मनुष्य जी नहीं सकता। हम सभी साथ–साथ जीते हैं। साथ–साथ सह–अस्तित्व कहलाता है।

इस प्रकार मनुष्य का लक्ष्य समाधान, समृद्धि अभय और सह–अस्तित्व है।

पाठ – 2

अस्तित्व

आकाश में अनेक तारे, ग्रह, उपग्रह गतिशील रहते हैं। इन्हें एक साथ अस्तित्व नाम देते है।

अस्तित्व का अर्थ है होना। आकश में अनेक तारे व ग्रह–उपग्रह होते हैं। इसलिए इसे अस्तित्व कहते हैं। आकाश में अनेक ग्रह–उपग्रह एवं तारे साथ–साथ हैं। इसे हम 'सह अस्तित्व' कहते हैं।

आकाश को शून्य भी कहते हैं। इसे खाली स्थान या खाली जगह भी कहते हैं। आकाश में ही सभी तारे, ग्रह–उपग्रह गतिशील रहते हैं। अतः आकश ही सबका आवास स्थल है। इसलिए इसे स्थान या खाली स्थान भी कहते हैं।

आकाश का कोई ओर–छोर नहीं है इसलिए इसे असीम कहते हैं। असीम का अर्थ है जिसकी कोई सीमा न हो। आकाश का विस्तार हर ओर है। इसलिए इसे व्यापक भी कहते हैं। शून्य व्यापक है। शून्य पारदर्शी भी है।

मिटटी की दीवार बिल्कुल ठोस दिखती है, परन्तु इसमें पानी की कुछ बूँद डाले तो वह दीवार में समा जाती है। इससे पता चलता है कि दीवार में छेद है। दीवार में खली जगह है, शून्य है।

शून्य ऑखों से समझ में नहीं आता, परन्तु समझ में आता है। सीमेन्ट की दीवार मिट्‌टी से भी अधिक ठोस व मजबूत दिखाई देती है, परन्तु इसमें भी खाली स्थान या शून्य होता है।

यदि एक गिलास पानी में शक्कर के कुछ कण डालकर हिलाऍ तो कुछ देर में शक्कर घुलकर अदृश्य हो जाता है। इससे यह समझ में आता है कि पानी में भी खाली जगह होता है।

हर इकाई में खली स्थान या शून्य होता है। सभी ग्रह–उपग्रह एवं तारे आकाश में ही भ्रमण करते हैं। हर ग्रह के सभी ओर शून्य है। किसी भी ग्रह या तारे को शून्य से अलग नहीं कर सकते, शून्य से हटा नहीं सकते। इससे यह समझ में आता है कि शून्य में सभी इकाईयॉ पूरी तरह डूबी है। सभी इकाईयाँ गतिशील है, परन्तु शून्य या खाली स्थान में कोई गति नहीं है।

पाठ – 3

पदार्थ अवस्था

अभी तक हम यह पढ़ व समझ चुके हैं कि मिट्टी, पत्थर, वायु और जल को सम्मिलित रूप में पदार्थ अवस्था कहते हैं।

मिट्टी, पत्थर एवं सीमेंट से बने मकान भी पदार्थावस्था के ही होते हैं। ये मकान एक बार बन जाने के बाद अनेक वर्षों तक बने रहते हैं। इसी प्रकार, ईंट, मिट्टी का घड़ा, दीपक ये सभी बनने के बाद अपने आकार में बने रहते हैं। यह पदार्थ का एक आचरण है। यह आचरण बना रहता है। इसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। इसी कारण हम इनका उपयोग भी करते है।

इस प्रकार हम यह समझते हैं कि पदार्थ अवस्था का आचरण निश्चित होता है। इसे हम व्यवस्था कहते हैं। लोहा, सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता ये धातुएँ कहलाती है। धातु भी पदार्थावस्था में होते हैं। इनका आचरण भी निश्चित होता है।

पदार्थ अवस्था में कई प्रकार की क्रियाएँ होती है। इन्हीं क्रियाओं के द्वारा ही मनुष्य इन्हें पहचानता है। जैसे लोहा, चुम्बक की ओर आकर्षित होता है एवं चुम्बक के पास सटकर स्थिर हो जाता है। इसे बोलचाल की भाषा में कहा जाता है कि लोहा चुम्बक से चिपक गया। यह अपने आप अलग नहीं होता। कुछ बल प्रयोग के द्वारा ही दोनों को अलग किया जा सकता है।

जब कभी लोहे को पहचानने की आवश्यकता होती है तो चुम्बक को लाया जाता है। यदि चुम्बक उस वस्तु से चिपक जाए तो उसे हम लोहा मानते हैं। लोहा और चुम्बक एक दूसरे को पहचानते हैं एवं निर्वाह करते हैं। इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इसकी निरन्तरता होती है।

पहाड़ों को देखने पर उसमें ढाल दिखाई देता है। खेतों एवं मैदानों में भी ढाल दिखाई देता है। हम आँखों से देखकर ढाल को पहचानते है, परन्तु जब ढाल बहुत कम हो तो आँखों से पहचान नहीं हो पाती, जैसे कमरे का फर्श। तब हम वहाँ पानी डालकर देखते है। पानी जिस ओर जाता है उस ओर ढाल होती है।

पानी के इस आचरण के आधार पर एक यंत्र बनाया गया है – इसे हम स्प्रिट लेबल कहते हैं। इसमें एक काँच की नली में पानी भरा रहता है और थोड़ा सा भाग खाली रहता है। इस खाली भाग में वायु भरी रहती है। वायु बुलबुले की तरह दिखाई देता है। जब इस यंत्र को भूमि में रखा जाता है तब पानी ढाल की ओर रहता है एवं बुलबुला ऊँचाई की ओर। इस प्रकार से हम सामान्य ढाल को भी पहचानते हैं।

अतः पहचानना एवं निर्वाह करना पदार्थ की क्रियाएँ है। ये क्रियाएँ निरन्तर एक सी रहती है। सभी पदार्थ का आचरण निश्चित है एवं यह व्यवस्था में होते हैं।

पाठ – 4

प्राणावस्था

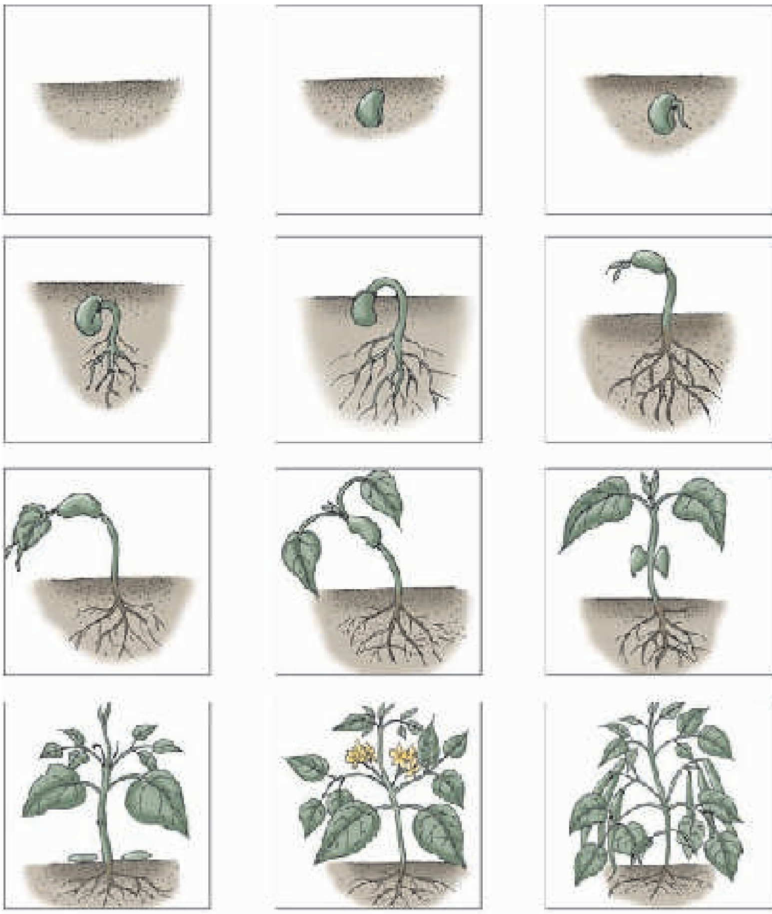

पूर्व कक्षा में हम पढ़ एवं समझ चुके हैं कि पेड़–पौधों को वनस्पति कहते हैं। ये प्राणावस्था में पहचाने जाते हैं। प्राणावस्था में अनेक प्रजाति होते हैं। प्रत्येक प्रजाति का आचरण निश्चित होता है।

वृक्ष, झाड़ी लता या बेल एवं घास या शाक प्राणावस्था के प्रकार हैं। इस कक्षा में हम प्राण अवस्था और पदार्थ अवस्था में अन्तर को समझेंगे।

प्राणावस्था की इकाईयों में वृद्धि होती है। एक छोटा पौधा धीरे–धीरे बड़ा होकर वृक्ष बन जाता है। गेहूँ, धान जैसे पौधे में भी वृद्धि होती है। इसी प्रकार झाड़ियों एवं लता या बेलों में भी वृद्धि होती है।

पदार्थ अवस्था की इकाईयों में वृद्धि नहीं होती है। ये जितने बड़े रहते हैं उतने ही बड़े बने रहते हैं। जैसे हमारे मकान में कोई वृद्धि नहीं होती। घर में रखे बर्तन भी बड़े नहीं होते। यह पदार्थ अवस्था एवं प्राणावस्था में एक अन्तर है।

प्राण अवस्था में एक लक्षण और समझ में आता है। जैसे एक पौधे को लगाने पर उसमें फूल, फल और बीज आते हैं। बीजों को बोने पर कई पौधे उगते हैं। इस प्रकार एक पौधा कुछ वर्षों में अनेक पौधों के साथ दिखाई देता है। पौधे की संख्या में वृद्धि हो जाती है। सभी पौधे एक जैसे ही होते हैं। पदार्थ अवस्था में ऐसा नहीं होता। घर में रखी लोहे, ताँबे, पीतल की वस्तुओं की संख्या में कोई वृद्धि नहीं होती। यह पदार्थ अवस्था और प्राणवस्था में दूसरा अंतर है।

पदार्थ अवस्था एवं प्राण अवस्था में एक और अन्तर होता है। पेड़–पौधे सांस लेते हैं। इसे हम श्वसन क्रिया कहते हैं। पदार्थ अवस्था में श्वसन क्रिया नहीं होती है।

इस प्रकार पदार्थ और प्राण अवस्था में मुख्यतः तीन अन्तर स्पष्ट होता है।

पदार्थ अवस्था और प्राण अवस्था में एक प्रकार की समानता भी होती है। यह समानता पहचानने एवं निर्वाह करने की होती है।

पदार्थ अवस्था में पहचानने एवं निर्वाह करने की क्रिया होती है। जैसे पानी ढाल की ओर बहता है। लोहा चुम्बक की ओर आकर्षित होता है।

प्राण अवस्था में भी पहचानने निर्वाह करने की क्रिया होती है। पौधे की जड़ नीचे, पानी की ओर बढ़ती है। पेड़–पौधे के तने एवं पत्तियां ऊपर, सूर्यप्रकाश की ओर बढ़ते हैं।

यदि एक ही भूमि पर गन्ना, इमली, मिर्च और करेला को बोएँ तो सभी पौधे भूमि से अपने लिए अनुकुल वस्तुओं को ग्रहण कर लेते हैं। सबका स्वाद अलग–अलग ही बना रहता है। इसमें कभी भी परिवर्तन नहीं होता।

इससे स्पष्ट होता है कि प्राण अवस्था का आचरण निश्चित होता है। ये व्यवस्था में रहते हैं।

पाठ – 5

जीवावस्था

पूर्व कक्षाओं में जीव अवस्था को समझे हैं। जीव अवस्था शाकाहारी और माँसाहारी इन दो वर्ग में पहचाने जाते हैं। इनका आहार एवं आचरण निश्चित होता है।

इस कक्षा में हम जीव अवस्था एवं प्राण अवस्था में अन्तर को समझेंगे।

पदार्थ अवस्था एवं प्राण अवस्था में मुख्यतः 3 अंतर पहचाने हैं (1) वृद्धि (2) संख्या वृद्धि और (3) श्वसन। अर्थात् पदार्थ अवस्था में वृद्धि संख्या वृद्धि एवं श्वसन नहीं होता और प्राण अवस्था में ये तीनों क्रियाएँ होती है।

जीव अवस्था में भी प्राण अवस्था की तरह श्वसन क्रिया होती है। जीव अवस्था में छोटे शिशु वृद्धि प्राप्त कर बड़े होते हैं एवं इनमें संख्या वृद्धि भी होती है।

सभी जीव अपने रहने के स्थान को पहचानते है, अपने भोजन को पहचानते है एवं इसका उपयोग करते हैं। अतः जीवों में भी पदार्थ अवस्था और प्राण अवस्था की तरह पहचानना एवं निर्वाह करने की क्रिया होती है।

जीव अवस्था में एक विशेष लक्षण होता है जो प्राण अवस्था और पदार्थ अवस्था में नहीं पाया जाता। जैसे किसी गाय का कोई नाम रखा जाए और उस नाम से पुकरा जाए तो वही गाय आती है। अन्य गाय उस ध्वनि से प्रभावित नहीं होती। कुत्ते, घोड़े आदि जीवों में भी इस लक्षण को पहचान सकते हैं। अतः गाय, घोड़ा, कुत्ता मानव के संकेत को मानते हैं। इस क्रिया को हम 'मानना' कहते हैं।

अतः जीव अवस्था में पहचानना, निर्वाह करना और मानना ये तीन क्रियाएँ होती है। इन तीनों के आधार पर जीव का आचरण स्पष्ट होता है ये आचरण निरन्तर बने रहते हैं। इन्हीं आचरण के आधार पर ये व्यवस्था को प्रकाशित करते हैं।

पाठ – 6

ज्ञानावस्था

पूर्व कक्षाओं में हम यह समझ चुके है कि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है। सभी मानव की रचना एवं लक्ष्य एक समान है। प्रत्येक मानव में कल्पनाशीलता एवं कर्म स्वतंत्रता होती है। इस आधार पर भी मानव समान है।

इस पाठ में हम मानव में पाई जाने वाली और समानताओं को समझेंगे।

अब हम अपना अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन में हम अपनी क्रियाओं को जाचेंगे।

हम दो प्रकार की क्रियाएँ करते हैं। इनमें से एक प्रकार की क्रियाऍ स्वतः होती है जैसे सॉस लेना, किए हुए भोजन का पाचन, गर्मी से पसीना आना, शरीर में रक्त का बहना। ये क्रियाएँ स्वतः या अपने आप हो रही है। इन्हें करने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

दूसरे प्रकार की क्रियाओं को ऐच्छिक क्रिया कहते हैं। जैसे चलना, पढ़ना, लिखना, सायकल चलाना, मंजन करना, भोजन करना, सैर करना, स्नान करना आदि। इन्हें हम प्रयास पूर्वक करते हैं। ये अपने आप नहीं होती है हम इन क्रियाओं की जिम्मेदारी लेते हैं। जैसे हमसे पूछा जाय कि मंजन कौन कर रहा है ? तब हम कहते है कि मैं कर रहा हूँ। इस प्रकार जिम्मेदारी लेना समझ में आता है। जिम्मेदारी लेने वाले के लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग करते हैं अतः जिम्मेदारी लेने वाले का नाम 'मैं' है।

पहले प्रकार की क्रियाएँ स्वतः होती है। हम उनकी जिम्मेदारी नहीं लेते हैं, यदि यदि पेट में दर्द हो तो हम वैद्य या डॉक्टर से कहते हैं कि पेट में दर्द है। हम यह नहीं कहते हैं कि मैं पेट में दर्द पैदा कर रहा हूँ। हम कहते हैं कि स्वतः ही दर्द हो रहा है। स्वतः क्रिया करने वाले को 'शरीर' कहते हैं। ऐच्छिक क्रिया करने वाले को 'मैं' कहते हैं। 'मैं' को जीवन भी कहते है।

इस प्रकार प्रत्येक मानव दो प्रकार के क्रियाकलापों का सम्मिलित रूप है। स्वतः क्रिया एवं ऐच्छिक क्रिया या शरीर एवं जीवन। इस प्रकार प्रत्येक मानव शरीर क्रिया एवं जीवन क्रिया का संयुक्त रूप है। यह प्रत्येक मानव में समान है।

पाठ – 1

इसके पूर्व हम यह समझ चुके हैं कि जीव अवस्था में पहचानने, निर्वाह क
क्रिया होती है। मानव में पहचानने, निर्वाह करने एवं मानने की क्रिया होती है, साथ में जानने की क्रिया भी होती है। जैसे हम सर्दी–गर्मी को पहचानते हैं। यह पहचानने की क्रिया है। इसी के साथ भूख, प्यास, निद्रा को भी पहचानते हैं। पहचानने के पश्चात् इसे पूरा करने का उपाय करते हैं – यह निर्वाह करना कहलाता है। भूख लगने पर भोजन करना ही निर्वाह करना है।

इसी प्रकार हम कई चीजों को मानते हैं। जैसे अपना नाम को मानते हैं। अपने माता–पिता के नाम को मानते हैं। अनेक वस्तुओं के नाम को मानते हैं। कई बातों को हम मानते हैं और उनको जानते भी हैं। जैसे पृथ्वी, सूर्य की चारों ओर परिक्रमा करता है। यह हम मान लेते हैं, परन्तु यह कैसे होता है ?इसे पूछने पर हम समझा नहीं पाते। जानने पर हम स्वयं भी समझते हैं एवं सभी को समझा सकते हैं।

जानना ही समझना कहलाता है। जानने के लिए हम विद्यालय आते हैं। मानव का मुख्य कार्य समझना है। जानने पर ही हम सही कार्य कर पाते हैं एवं सुखी होते हैं।

पाठ – 7

परिवार

प्रत्येक मानव परिवार में रहता है। मानव का अधिकांश समय परिवार में ही बितता है। मनुष्य के जीने की सबसे महत्वपूर्ण स्थान परिवार है।

परिवार में प्रत्येक मनुष्य का ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, अन्य सभी व्यक्ति का ध्यान रखते हैं। इस प्रकार सब मिल जुल कर रहते हैं, एक दूसरे के सुखी रहने का उपाय सोचते हैं एवं उसे पूरा करते हैं। यह परिवार का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है। सभी बड़े इसमें पारंगत होते हैं। सभी छोटे इसे समझते सीखते और अभ्यास करते हैं। कई वर्षों के अध्ययन और अभ्यास के बाद परिवार में जीने में पारंगत होते हैं।

परिवार में जीने में पारंगत होने पर हम सुखी होते हैं एवं दूसरे के सुख का स्त्रोत बनते हैं, अर्थात् हम सबको सुखी कर सकते हैं। परिवार में सफलतापूर्वक जीने में समर्थ होने पर ही हम परिवार में बड़ी इकाई, अर्थात् समाज में पारंगत होते हैं। परिवार मानव समाज की सबसे छोटी इकाई है।

सुखी होकर जीने के लिए मानव परिवार में अनेक प्रकार के कार्य करता है। जैसे –

1. विश्वास, सम्मान आदि मूल्यों का निर्वाह
2. सेवा–भोजन तैयार करना, परोसना, रोगी की सेवा, वृध्दों एवं छोटे शिशुओं की सेवा।
3. सफाई–घर को स्वच्छ रखना, घर के आस–पास की सफाई, उपयोगी बर्तन की सफाई आदि।
4. शिक्षा – बच्चों की शिक्षा का प्रबंध के लिए विद्यालय भेजना, घर में उनके उन्नति पर ध्यान देना एवं घर में शिक्षा के लिए वातावरण बनाना।
5. उत्पादन – परिवार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कोई उत्पादन कार्य में भागीदारी करना जैसे – अन्न उपजाना, दुध के लिए पशुपालन आदि।
6. अतिथि सत्कार – परिवार में मित्र एवं सम्बन्धी आने पर उनका सत्कार करना, उनसे वार्तालाप करना एवं उनके कार्यों को पूरा करना अतिथि सत्कार कहलाता है।

प्रत्येक परिवार में ये सब कार्य होते है। बड़े इन कार्यों को करते है। सभी छोटे बच्चे इसमें सहयोग करते हैं एवं कार्यों को सीखते है।

पाठ – 8

मानव सम्बन्ध

हम सभी परिवार में जीते है। परिवार में माता–पिता, काका–काकी, भाई–बहन के सम्बन्ध होते है।

इस कक्षा में हम भाई–बहन के सम्बन्ध को समझेंगे।

भाई–बहन परिवार में साथ–साथ रहते है। भाई–बहन एक–दूसरे का सहयोग करते है। ये मिलकर खेलते, पढ़ते एवं अपने आवश्यक कार्य को करते हैं। जब किसी को करने में भाई को कोई कठिनाई होती है तब वह अन्य भाई और बहनों का सहयोग चाहता है। भाई–बहन उनका सहयोग करते है। इस प्रकार पढ़ने–लिखने में, गृहकार्य करने में, भाई–बहन एक दूसरे का सहयोग करते हैं।

भाई–बहन एक दूसरे को भैया या दीदी कहकर पुकारते हैं। भैया और दीदी के सम्बोधन से भाई–बहन का सम्बन्ध पहचाना जाता है।

हम लोग हमारे साथ रहने वाले सभी व्यक्तियों को किसी सम्बन्धी के रुप में पहचानते है एवं उसी के अनुसार सम्बोधन करते है। जैसे – घर में हम माता जी, पिता जी, भैया जी, दीदी जी, दादा जी, दादी जी को सम्बोधित करते हैं। इसी प्रकार माता के बहनों को हम मौसी जी कहते है, पिता के बहनों को बुआ जी कहकर पुकारते है। माता के भाईयों को मामा जी एवं पिता के भाइयों को काका जी कहते है।

इसी प्रकार परिवार के बाहर भी हमारे सम्बन्ध होते है।

पाठ – 9

मानव समाज

पृथ्वी पर रहने वाले सभी मानवों के संयुक्त रुप में समाज कहते है। प्रत्येक शिशु एवं मानव सभी परिवार में ही रहते है। इस प्रकार पृथ्वी के सभी परिवारों का समुच्चय मानव समाज कहलाता है। हम सभी मानव समाज की इकाई है। हमारे सभी कार्यों एवं समझ का स्त्रोत मानव समाज ही है। जैसे हम जो भाषा बोलते है उसे परिवार से ही सीखते है। विद्यालय में भी भाषा, गणित, विज्ञान सीखते है। इसी प्रकार भोजन करना, कपड़े पहनना, लिखना, पढ़ना हम समाज से ही सीखते है।

विद्यार्थी जैसे–जैसे बड़े होते है उन्हें अनेक प्रकार के कार्य एवं कलाएँ सिखाए जाते हैं। लोगों के साथ अच्छी तरह से एवं प्रसन्नतापूर्वक जीने की विधि भी समझाई जाती है। सीख एवं समझकर सभी विद्यार्थी परिवार एवं समाज के कार्यों में भागीदारी करते है।

समाज में मानव अलग–अलग समूहों में रहते है, सबसे छोटा समूह परिवार कहलाता है। इससे बड़े समूह को परिवार समूह या टोला कहते हैं। इसमें कुछ परिवार साथ–साथ रहते हैं। इससे बड़ा समूह ग्राम या गाँव कहलाता है। गाँव में सभी लोग साथ–साथ मिलकर रहते है। विद्यार्थीयों के लिए विद्यालय, रोगियों के लिए औषधालय, आवागमन के लिए सड़क, पीने के लिए पानी का प्रबंध सभी ग्रामवासी मिलजुल कर करते हैं। गाँव में मुख्यतः कृषि, पशुपालन एवं कुटीर उद्योग का कार्य होता है।

ग्राम से बड़े मानव समूह को नगर कहते है। नगर में अनेक परिवार पास–पास निवास करते है। नगर की जनसंख्या ग्राम से आधिक होती है। नगर में कई मुहल्ले होते हैं। मुहल्ले को पारा भी कहते है। नगर का एक–एक पारा एक ग्राम जितना बड़ा होता है।

नगर में अनेक लोग रहते हैं, कुछ स्थानों में अनेक लोग साथ–साथ पहुँचते है जैसे – खेल के मैदान में, सांस्कृतिक भवन में । इसलिए ये स्थान ग्राम से तुलना में बड़े होते हैं। यहाँ पहुँचने की सड़के भी गाँव तुलना में चौड़ी होती है। नगर के लोग ग्राम के लोगों की तरह मिलजुल कर रहते है। नगर में विद्यालय, औषधालय, सड़क, पानी, विद्युत सेवा जैसे कार्यों को स्वयं संचालिक करते है।

नगर में आजीविका के लिए मुख्य रुप से उद्योग होते हैं । उद्योंगों में बड़े पैमाने उत्पादन होता है। नगर चारों ओर सड़कों द्वारा आस–पास के ग्रामों एवं अन्य नगरों से जुडा होता हैं। इसलिए यहाँ विनिमय कार्य अच्छी तरह होता है।

नगर में भोजन, दुध जैसी वस्तुएँ ग्राम से ही आती है एवं नगर उत्पादित होने वाली वस्तु जैसे लोहा, मशीने, कम्प्यूटर ग्रामों में पहुँचती है।

पाठ – 10

जीवन व शरीर की क्रियाएँ

मैं जीवन हूँ। शरीर को चलाता, उठाता, बैठाता हूँ। मैं शरीर को चलाता हूँ। शरीर मेरे अनुसार चलता है। मैं जानने बूझने वाला हूँ, निर्णय लेने वाला हूँ। शरीर मेरे अनुसार चलता है। शरीर पर मेरा पूरा नियंत्रण है, मैं शरीर को नियंत्रित करता हूँ।

मैं क्रियाशील रहता हूँ, शरीर भी क्रियाशील रहता है। मेरी (जीवन की) क्रियाऍं एक प्रकार की है। एवं शरीर की क्रियाऍं अलग प्रकार की है।

जीवन में सोचने–विचारने एवं जानने–बूझने की क्रियाऍं होती है। शरीर में श्वसन, रक्त प्रवाह, भूख भोजन पचना इस प्रकार की क्रियाऍं होती है।

अपनी तरफ ध्यान देने पर हम समझते हैं कि हर समय विचार कर रहे हैं, कुछ सोच रहे हैं या कहीं ध्यान दे रहे है। ऐसा हर क्षण होता रहता है। जब हम स्वस्थ होते हैं तब आस–पास की चीजों पर अधिक ध्यान देते हैं और जब अस्वस्थ होते हैं तो शरीर पर अधिक ध्यान देते है। इन दोनों स्थिति में विचार करते रहते हैं। विचार निरंतर है। हम जिस वस्तु का विचार करते हैं वह वस्तु बदल जाती है एवं दूसरे वस्तु पर विचार करते लगते हैं। इस प्रकार विचार चलता ही रहता है। यह क्रिया कभी भी बंद नहीं होती। रात्रि सोते समय भी यह चलती रहती है। तभी तो सपने देखते है। सोते समय कोई परिचित व्यक्ति नाम से पुकारने पर जगते हैं। मच्छर काटने पर उसे भगाने का प्रयास करते है। सोते समय करवट भी बदलते हैं। ये सब मेरे द्वारा ही होता है।

शरीर में साथ, चलना, भोजन पचना, रक्त दौड़ना, मांसपेशियों को हिलाना–डुलाना ये सब क्रियाऍं बार–बार होती है। स्वशन भी बार–बार होता है।

जीवन की क्रियाऍं निरंतर है, शरीर की क्रियाऍं रूक–रूककर होती है। जीवन की शक्ति कभी समाप्त नहीं होती, जबकि शरीर की शक्ति कम होती है, शरीर थकता है, आराम की आवश्यकता होती है। भोजन के द्वारा शरीर को पुनः शक्ति प्राप्त होती है। शरीर की शक्ति घटती बढ़ती है, जबकि जीवन की शक्ति अक्षय है।

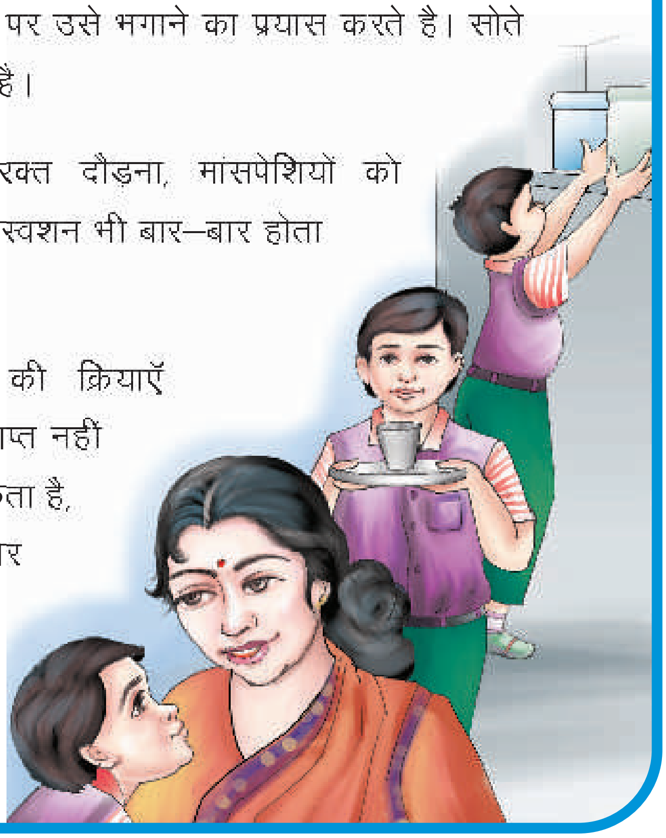

पाठ – 11

जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना

जो वस्तु हर समय है, निरतंर है, उन्हें समझना, जानना कहलाता है। जैसे पानी ढाल की ओर बहता हैं। यह हमेशा होता है। इसे हम नियम कहते हैं। हम इस नियम को समझते हैं तो हमने इसे जान लिया।

मानने की अर्थ है– स्वीकार करना। जो वस्तुएँ बदलती रहती हैं और निरंतर रहती हैं उन सभी को हम मानते हैं, मान सकते हैं। जैसे एक स्थान पर सम्मान को व्यक्त करने के लिए पैर छूते हैं, दूसरे स्थान पर हाथ मिलाते हैं और तीसरे स्थान पर गले मिलते हैं। इस प्रकार सम्मान व्यक्त करने के तरीके में कोई समानता नहीं होती, ये स्थान–स्थान पर बदलते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ समय पूर्व लोग भूमि पर बैठकर भोजन करना श्रेष्ठ मानते थे और आज टेबल पर बैठकर भोजन करना श्रेष्ठ मानते है। ये मानने के उदाहरण है, ये समय और स्थान पर बदलते रहते है।

पहचानने का अर्थ है पांच ज्ञानेन्द्रियों में से किसी एक या अधिक इंद्रियों द्वारा पहचानना जैसे आम के वृक्ष को पहचानते हैं। पहले यह स्वीकार्य रहता है कि धरती पर कई प्रजाति के वृक्ष होते हैं, उसमें से आम के वृक्ष को पहचानना। इस आम के वृक्ष के साथ जो श्रम किया जाता है उसे निर्वाह क्रिया कहते हैं। जैसे आम वृक्ष को सींचना, सुरक्षा करना, उसका फल तोड़ना आदि।

पाठ – 12

आवश्यकता

मानव जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है। शरीर स्वतः क्रिया करता है और मै (जीवन) जानबूझकर क्रिया करता है।

अपना अध्ययन करना मेरे लिए आवश्यक है। अपना अध्ययन करने पर हम अपनी आवश्यकता को ठीक से पहचान पाते है और उसकी पूर्ति करते हैं। हमारी आवश्यकताएँ दो प्रकार की है। भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि, कुर्सी, मेज, सायकल, कार। ये एक प्रकार की आवश्यकता है। शरीर को भूख लगती है। भोजन से भूख मिटती है। शरीर को गर्मी–ठंडी लगती है। वस्त्र से शरीर का बचाव होता है। आवास भी शरीर का बचाव करता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हम इन वस्तुओं की व्यवस्था करते हैं। रोगी होने पर औषधि की आवश्यकता होती है। शरीर द्वारा कोई कार्य करने के लिए कुर्सी, मेज, सायकल जैसे कई वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इन वस्तुओं से अपना कार्य आसानी से कर सकते हैं, यदि मुझे अपने गांव के पास के गांव में जाना हो तो सायकल पर्याप्त है, किन्तु यदि मुझे दूर गांव जाना हो तो मोटर सायकल या रेलगाड़ी की आवश्यकता होती है। किसी दूसरे देश जाने के लिए वायुयान की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार शरीर की सीमा को पहचानते हुए हम अनेक यंत्रों का प्रयोग करते हैं। कील गाड़ने के लिए हथौड़े का प्रयोग करते हैं। हॉथ से कील गाड़ेंगे तो कील नहीं गड़ेगा, हाथ घायल हो सकता है।

साधनों के प्रयोग से हम अपना समय बचा पाते हैं, एवं कम थकान से अधिक कार्य कर पाते हैं। कई कार्य शरीर की क्षमता से बाहर के होते हैं। जैसे बहुत सूक्ष्म वस्तु को देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी यंत्र (माइक्रोस्कोप) का प्रयोग करते हैं। दूर की वस्तु देखने के लिए दूरदर्शी यंत्र का प्रयोग करते हैं। इसमें दूरदर्शन एवं इंटरनेट आते हैं। दूर की ध्वनि सुनने के लिए दूरभाष यंत्र जैसे फोन, मोबाईल का प्रयोग करते है। इन साधनों के द्वारा व्यवहार या कार्य करना सरल हो जाता है।

इस प्रकार की अनेक वस्तुएँ है। क्या हमारी आवश्यकता मात्र यही है ? या इनसे भिन्न प्रकार की वस्तुओं भी हमारी आवश्यकता है ? ये सभी शरीर से जुड़े हुई आवश्यकता है। मेरी (जीवन की) आवश्यकता इनसे अलग प्रकार की है।

जब कोई मुझे प्यार करता है, मेरा ध्यान रखता है, मुझसे ठीक से बात करता है तो मुझे अच्छा लगता है, जब कोई बात मुझे समझ में आती तो मुझे अच्छा लगता है, ये भी मेरी आवश्यकता है। मेरी (जीवन की) समझ और भाव से पूरी होती है। मेरी (जीवन की) आवश्यकता सुख है। शरीर की आवश्यकता अन्य वस्तुएँ है। माँ मुझे भोजन कराती है। इससे मेरा पेट भरता है और माँ के प्यार से तृप्त होता हूँ, मुझे अच्छा लगता है।

शरीर को जो भी आवश्यकता होता है वह एक समय के लिए आवश्यक होता है। वही दूसरे समय के लिए अनावश्यक होता है जैसे भूख लगने पर भोजन चाहिए, पेट भरने पर भोजन नहीं चाहिए या ठंड में ऊनी कपड़े चाहिए, गर्मी में नहीं। कहीं आने–जाने के लिए वाहन चाहिए, सोने के लिए नहीं, किन्तु सभी मुझे प्यार करे यह आवश्यकता निरंतर बनी रहती है।

इससे एक बात स्पष्ट होता है कि जीवन की आवश्यकता निरंतर है एवं शरीर की आवश्यकता सामयिक (कभी–कभी) है।

पाठ – 13

समझना और देखना

वस्तुओं को हम आँखों से देखते हैं, जैसे हमने एक आम के पेड़ को देखा। उस पेड़ की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई हमे दिखता है, साथ ही उसका रंग, उसके पत्ते, फल–फूल भी दिखते है। इसे हम रूप भी कहते हैं। यह ऑखों से दिखता है।

हमें यह भी पता है कि आम खट्टा या मीठा होता है। यह ऑखों से नहीं दिखता है। आम को देखकर यह नहीं कहा जा सकता, कि यह खट्टा या मीठा है। आम को जीभ में रखकर ही यह पता चलता है इसे गुण कहते है। रूप का अर्थ है आकार और आयतन। आम खट्टा है या मीठा इसे आम के रूप से नहीं बताया जा सकता है।

रूप एवं गुण ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पहचान पाते हैं। ऑख, कान, नाक, जीभ एवं त्वचा ज्ञानेन्द्रियॉ है।

अपने अभिभावकों के प्रति कृज्ञघ्नता का भाव होता है। इसी प्रकार अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं के प्रति भी कृतज्ञता का भाव होता है। बड़े भाई–बहनों के प्रति सम्मान का भाव होता है। भाव ऑखों से नहीं समझा जा सकता हैं।

इसी प्रकार बहुत सी वस्तुएँ ऐसी है जो ऑखों से नहीं दिखती है, परन्तु हमें समझ में आता है।

इससे स्पष्ट होता है कि समझ हमारी ऑखों से अधिक है। समझ हमारी ज्ञानेन्द्रियों से भी अधिक है।

पाठ – 14

न्याय का याचक

प्रत्येक शिशु का जन्म परिवार में होता है एवं वह परिवार के संरक्षण में ही पलता बढ़ता है। शिशु सर्वप्रथम अपनी माता के साथ संबंध पहचानते हैं एवं माता पर विश्वास करते हैं। माता उदारता के साथ संतान का पालन करती है, खिलाकर खाती है एवं सुलाकर सोती है। माँ, शिशु की प्रत्येक आहट पर सजग रहती है। माता की ममता शिशु को संबंध की पहचान कराती है। इस प्रकार के निर्वाह में माता एवं शिशु दोनो को सुख मिलता है। यह माता और संतान के संबंध में न्याय है।

माता–पिता संतान का पोषण संरक्षण करते हैं। इसके लिए आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराते है। शिशु की शिक्षा का प्रबंध करते हैं। शिशु को घर के कार्य एवं सभी आवश्यक कार्य सिखाते हैं। परिवार एवं समाज के कार्यक्रमों में साथ रखते हैं। शिक्षा, सेवा एवं श्रम करने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार के निर्वाह से उभय पक्ष को सुख मिलता है। यह माता–पिता एवं संतान के संबंध में न्याय है।

परिवार के प्रत्येक सदस्य से शिशु न्याय की अपेक्षा रखता है। प्रत्येक सदस्य से सहयोग की अपेक्षा रखता है। किसी प्रकार की भूल न होने पर अपने से बड़े के द्वारा सुधार की अपेक्षा रखता है। शारीरिक कष्ट होने पर सांत्वना एवं सेवा की अपेक्षा रखता है। किसी भी क्रिया को सीखने की इच्छा होने पर अपने से बड़ों से उसे सिखाने की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार की अपेक्षा को न्याय की अपेक्षा कहते है। यह प्रत्येक शिशु में जन्म से ही होता है। इसलिए प्रत्येक शिशु जन्म से ही न्याय का याचक होता है।

शिशु न्याय का याचक होता है परन्तु न्याय नहीं जानता है। इसलिए कभी अच्छा कभी बुरा व्यवहार करता है। माता पिता एवं अध्यापक अध्यापिका के सान्निध्य में न्याय समझता है, एवं न्याय करने में सक्षम होता है।

शिशु न्याय को समझ सके एवं वयस्क होकर प्रत्येक मानव के साथ न्याय कर सके यह शिशु पालन की मूल कामना होती है। इसलिए घर में अभिभावक, बड़े भाई–बहन एवं विद्यालय में अध्यापक–अध्यापिका का न्याय समझाते है।

मानव मानव के संबंध को समझना एवं प्रत्येक मानव के साथ संबंध के अनुसार व्यवहार करना न्याय कहलाता है।

पाठ – 15

आज्ञापालन

आज्ञा का अर्थ है किसी के द्वारा दिया गया आदेश। पालन का अर्थ होता है– उसके अनुसार करना। इस प्रकार आज्ञा पालन का अर्थ है आदेश को मानना एवं उसके अनुसार करना। जैसे माँ शिशु को कहती है 'मंजन करो'। शिशु माता की बात मानकर मंजन करता है। शिशु ने माता की बात को माना यह आज्ञा पालन हैं।

माता–पिता, अध्यापक एवं अध्यापिका अच्छे कार्य एवं अच्छे व्यवहार को समझे एवं सीखे रहते हैं। समझे हुए को समझाने एवं सीखे हुए को सिखाने के लिए अभिभावक आज्ञा देते हैं। इनकी आज्ञा पालन करके शिशु सीखते एवं समझते हैं। अध्यापक एवं अध्यापिका विद्यार्थी के लिए आवश्यक व्यवहार एवं कार्यों को समझाते हैं एवं सिखाते हैं। समझाने सिखाने के लिए आज्ञा देते हैं एवं शिशु आज्ञा पालन करते हैं।

छोटे शिशु जो बोलने में पूरी तरह सक्षम नहीं होते एवं पूरी भाषा भी नहीं समझते, वे आज्ञा पालन के द्वारा ही सीखते हैं। प्रत्येक शिशु के लिए माता–पिता का आज्ञा पालन एवं विद्यार्थी के लिए अध्यापक–अध्यापिका का आज्ञा पालन अनिवार्य है।

शिक्षा

पाठ – 16

शिक्षा के तीन भाग होते है – समझना, सीखना और कहना।

1. समझना :– निरंतर रहने वाली वास्तविकता को जानना, समझना कहलाता है। जैसे – मानव–मानव संबंध मानव एवं प्रकृति का संबंध तथा नियम।

मानव का मानव से संबंध होता है। इसी कारण शिशु बड़े होते हैं एवं समझदार बनते हैं। माता पिता एवं अध्यापक अध्यापिका के साथ संबंध को समझकर स्वीकार करने से यह उपलब्धि होती है।

मानव एवं प्रकृति का संबंध भी निरंतर एक जैसा रहता है। जैसे मानव वायु से श्वास लेता है। प्रकृति की वनस्पति एवं जल से शरीर का पोषण करता है। प्रकृति वस्तुओं के आपस के संबंध कभी नहीं बदलते, निरंतर एक जैसे रहते हैं, इन्हें हम नियम कहते है। जैसे पानी ढाल की ओर बहता है। सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा से निकलता दिखाई देता है।

2. सीखना :– सीखने के लिए बहुत सारी क्रियाएँ होती है, इन्हें अभ्यास पूर्वक सीखा जाता है। जैसे – पढ़ना, लिखना, भाषा बोलना, सायकल चलाना, गीत गाना, वाद्य यंत्र बजाना, गाड़ी चलाना, कम्प्यूटर चलाना। सीखने के लिए प्रथम क्रियाओं को देखते हैं एवं स्वयं उसे करने का अभ्यास करते है। इस कार्य में सीखे हुए लोग सहयोग करते है। जैसे सायकल चलाने के लिए पिता एवं बड़े भाई–बहन सहयोग करते हैं।

3. करना :– अनेक प्रकार के कार्य प्रतिदिन मानव, समाज में किये जाते हैं। इस कार्य को अध्ययनपूर्वक करना बनता है। जैसे पेड़ उगाने के लिए मिट्‌टी खोदना एक आवश्यक कार्य है। प्रथम प्रयास में ही खोदने के लिए असफलता मिल जाती है, परन्तु इससे अधिक देर तक खोदने में सफल नहीं होते। प्रतिदिन अभ्यास करने पर पूरी मात्रा में कार्य करने में सफलता होती है।

मानव समाज में अनेक प्रकार के व्यवसाय किये जाते है। व्यवसाय के द्वारा मानव शरीर की आवश्यकता पूरी होती है। अपने आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यवसाय सीखा जाता है। भोजन पकाना, धान उगाना, भवन निर्माण, यंत्र सुधारना ये कार्य हैं।

एक मनुष्य के लिए समझना, सीखना एवं करना अनिवार्य है। इसके लिए शिशु काल से शिक्षा दिया जाता है।

विधि

पाठ – 17

विधि का अर्थ है तरीका। प्रकृति में पानी एक प्रकार से मिलता है। प्रत्येक स्थान पर पानी इसी प्रकार से मिलता है। नीम का वृक्ष भी एक ही प्रकार से पाया जाता है। बाघ एवं अन्य पशु भी एक ही तरीके से रहते हैं। इन्हे कुछ सीखाना नहीं पड़ता। ये सतत् एक जैसे रहते हैं। इनका आचरण निश्चित रहता है। ये व्यवस्था में होते हैं।

किन्तु मानव के साथ ऐसा नहीं है। एक शिशु को बाल्यकाल से ही जीने का सही तरीका सिखाया जाता है। समझे एवं सीखे बिना मानव सुखी होकर जी नहीं सकता। सभी मानव साथ–साथ जी कर सुखी रहे, इस उद्देश्य से जीना विधि कहलाता है। इसे ही जीने का सही तरीका कहते है।

मानव विधि या जीने का तरीका समझता है और समझकर करता है, क्योंकि मानव ज्ञानावस्था में है। मानव में समझने की आवश्यकता और संभावना है। पत्थर, पेड़–पौधों एवं जीवों को विद्यालय जाने की आवश्यकता नहीं, केवल मानव को विद्यालय जाने की आवश्यकता है। परिवार में जीते समय केवल एक ही व्यक्ति के लिए कार्यक्रम नहीं बनता, सभी की खुशी के लिए कार्यक्रम बनता है। सभी सुखी रहे यह व्यवस्था में होता है। व्यवस्था में जीने का तरीका ही विधि है। विधि के मुख्यतः दो भाग है – 1 मानव संबंध। इसे न्याय भी कहते हैं। 2 मानव एवं शेष तीनों अवस्था के साथ जीने का तरीका। इसे प्राकृतिक नियम कहते है।

परिवार एवं समाज में जीने का तरीका न्याय कहलाता है। मानव एवं शेष प्रकृति के साथ जीना व्यवसाय के लिए होता है। सभी व्यवसाय प्राकृतिक नियम से होने पर मानव सुखी रहता है।

विधि को समझना एवं जीना मानव के लिए निरंतर उत्सव है।

पाठ – 18

मानव शरीर

हमारा शरीर मुख्य रूप से हड्डियों का ढाँचा है। शरीर की पूरी लम्बाई हड्डियों से ही है। हाथ, पैर, सिर एवं धड़ ये सभी हड्डियों से ही बने हैं। हड्डियों के उपर मांस होता है और मांस चमड़ी से ढका होता है। चर्म (चमड़ी) शरीर का बाहरी आवरण होता है। चर्म एक प्रकार का रक्षा कवच होता है।

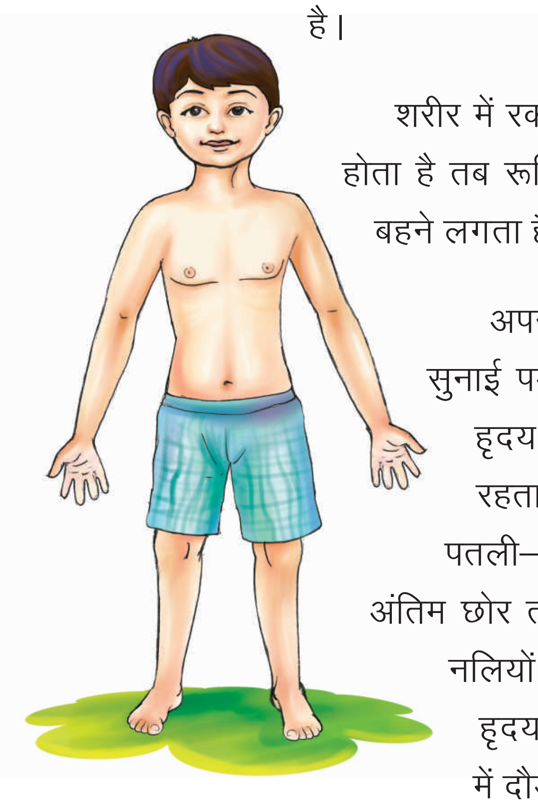

शरीर में रक्त होता है। जब कभी चोट के कारण चर्म परत श्रतिग्रस्त होता है तब रूधिर (रक्त) बाहर आ जाता है। घाव बड़ा होने पर रूधिर बहने लगता है।

अपने छाती पर बाएँ ओर पर हाथ रहने पर धक–धक की ध्वनि सुनाई पड़ती है। इसे धड़कन कहते हैं। धड़कन वाले अवयव को हृदय कहते हैं। हृदय के धड़कने से पूरे शरीर में रक्त दौड़ते रहता है। हृदय से रक्त पूरे शरीर में पहुंचने के लिए पतली–पतली नलियाँ होती है। इन्हें धमनी कहते हैं। शरीर के अंतिम छोर तक पहुँचकर रक्त पुनः हृदय में वापस पहुंचता है। जिन नलियों से रक्त वापस हृदय में पहुँचता है उन्हें शिरा कहते हैं। हृदय हर समय धड़कता रहता है और रूधिर भी हर समय शरीर में दौड़ता रहता है।

हम सभी श्वास लेते हैं। श्वास लेने पर हमारी छाती फैलती है और श्वास छोड़ने पर छाती सिकुड़ती है। किसी भी स्वस्थ व्यक्ति को देखकर इसे समझा जा सकता है। श्वास लेने एवं छोड़ने वाले अवयव को फेफड़ा कहते हैं। श्वास लेने पर फेफड़ों में वायु भरती है और फेफड़े फैल जाते हैं। श्वास बाहर करने पर फेफड़ों से वायु बाहर निकल जाती है। इससे फेफड़े सिकुड़ जाते है। फेफड़े के द्वारा श्वास क्रिया हर समय होते रहती है। अधिक कार्य करने पर या दौड़ने पर श्वास क्रिया की गति बढ़ जाती है। नाक से श्वास लेते हैं।

हम जो भोजन करते हैं, वह एक नली से होकर पेट में जाता है। इस नली को आहार नली कहते हैं। पेट में पहुँचकर भोजन का पाचन होता है। आहार का उपयोगी भाग शरीर में रहता है। शेष भाग एक नली के द्वारा बाहर निकल जाता है। बाहर निकलने वाली वस्तु को मल कहते है।

पाठ – 1

हम जो पानी पीते हैं वह भी आहार नली से पेट में पहुँचता है। पाचन में पानी ... है। कुछ पानी शरीर में रहता है एवं शेष पानी एक अन्य नली द्वारा शरीर से बाहर ... उसे मूत्र कहते हैं। पानी का कुछ भाग स्वेद (पसीना) के रूप में भी बाहर निकलता है।

ये सभी कार्य शरीर में होते रहते हैं। इन कार्यों का ठीक होना ही स्वस्थ शरीर कहलाता है। इस कार्य में व्यतिरेक (गड़बड़ी) होना रोग कहलाता है। इन कार्यों का ठीक होना ही स्वस्थ शरीर कहलाता है। इस कार्य में व्यतिरेक (गड़बड़ी) होना रोग कहलाता है।

उपरोक्त सभी अंगो के कार्य निश्चित हैं। इनके कार्य बदलते नहीं हैं। हमेशा एक जैसे बने रहते हैं। यह व्यवस्था है। इस प्रकार हम यह समझते हैं कि शरीर एक व्यवस्था है।

पाठ – 19

औषधि

अनुकूल भोजन, पानी, व्यायाम, विश्राम एवं सफाई से शरीर स्वस्थ रहता हैं। भोजन अनुकूल न होने पर शरीर अस्वस्थ हो जाता हैं। अस्वस्थ शरीर को ठीक करने के लिए अनुकूल आहार, रख–रखाव और औषधि की आवश्यकता होती हैं। अनुकूल की समझ हमें माता, पिता और गुरूजन देते हैं।

अनेक वस्तुएँ औषधि कार्य में उपयोगी होती है। जैसे तुलसी, नीम, हल्दी, गुलाब का फूल, आँवला, नीबु।

सर्दी और खाँसी में तुलसी के पत्ते का रस देते हैं। चर्म रोग में नीम की पत्तियों को पीसकर लगाते हैं। चोट लग जाने पर हल्दी पीसकर लगाते हैं। गुलाब जल को आँख में प्रयोग करते हैं। आँवला और नीबू का उपयोग पेट के रोग में किया जाता हैं।

धनिया, मेथी, अजवाइन, कालीमिर्च जैसे मसाले भी औषधि कार्य में उपयोगी होते हैं।

पाठ – 20

शरीर स्वच्छता

स्वस्थ रहने के लिए हम शरीर की सफाई करते हैं। हाथ से भोजन करते हैं इसलिए भोजन के पूर्व अच्छी तरह हाथ को धोते है।

हमारे शरीर से पसीना निकलता है। पसीने के द्वारा शरीर की गंदगी बाहर निकलती है। इस गन्दगी को साफ करने के लिए हम स्नान करते हैं। शरीर को उच्छी तरह रगड़कर मैल दूर करते हैं। साबुन और पानी से हाथ धोते हैं। दिनभर बाहर घूमने एवं खेलने–कूदने से शरीर में धूल चिपकती है। स्नान के समय रगड़कर धूल को भी साफ करते हैं। दिनभर में 1 बार अवश्य स्नान करते हैं। अधिक गर्मी में 2 बार भी स्नान करते हैं।

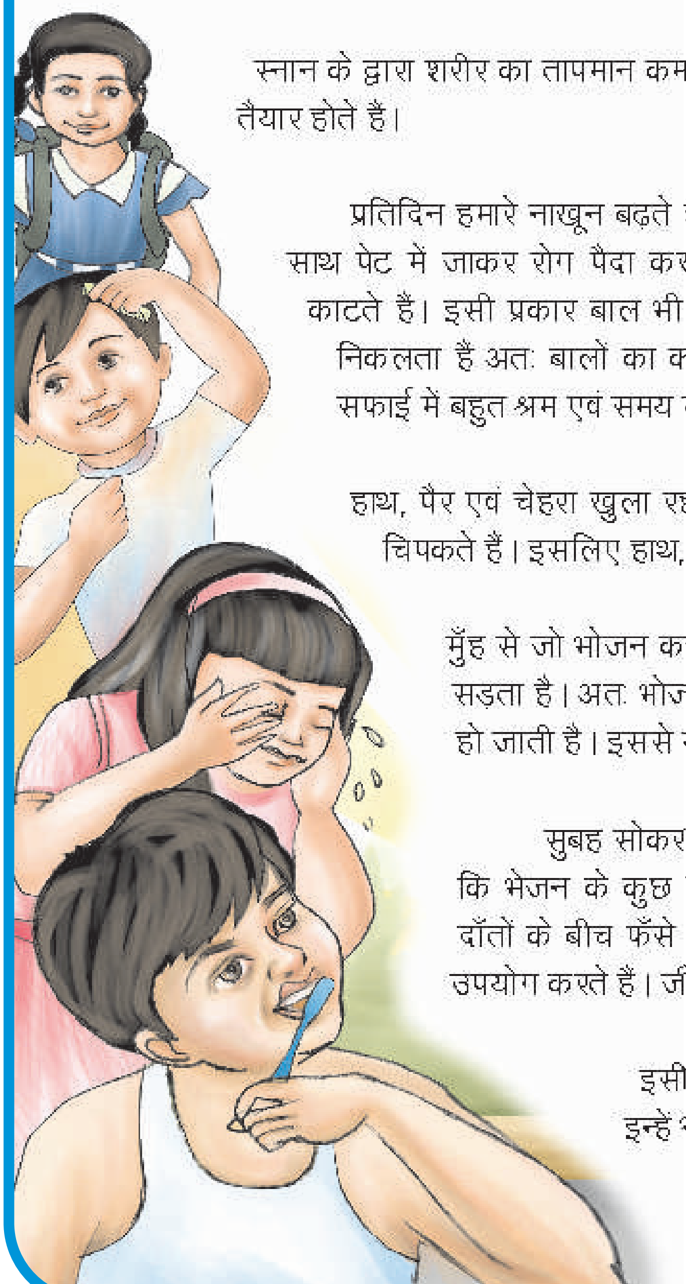

स्नान के द्वारा शरीर का तापमान कम होता है एवं हम ताजा होकर पुनः कार्य करने के लिए तैयार होते हैं।

प्रतिदिन हमारे नाखून बढ़ते हैं। नाखूनों के बीच में मैल घुसे रहते हैं जो भोजन के साथ पेट में जाकर रोग पैदा करते हैं। इससे बचने के लिए नियमित रूप से नाखून काटते हैं। इसी प्रकार बाल भी बढ़ते हैं, उसमें धूल चिपकती हैं सिर से भी पसीना निकलता हैं अतः बालों का काटकर छोटा रखते हैं। यदि बाल बड़े हो तो उसकी सफाई में बहुत श्रम एवं समय लगाते हैं।

हाथ, पैर एवं चेहरा खुला रहता है। धूल, मिट्टी और धुँआ इन स्थनों पर अधिक चिपकते हैं। इसलिए हाथ, पैर एवं चेहरे को दिन में कई बार धोते हैं।

मुँह से जो भोजन करते हैं उसका कुछ भाग मुँह में रह जाता है जो बाद में सड़ता है। अतः भोजन के बाद अच्छी तरह कुल्ला करने से मुँह की सफाई हो जाती है। इससे मसूढ़े एवं दाँत स्वस्थ रहते है।

सुबह सोकर उठने से मुँह से दुर्गन्ध आती है। इससे पता चलता है कि भेजन के कुछ टुकड़े सड़ गए हैं। इन्हें अच्छी तरह साफ करते हैं। दाँतो के बीच फँसे मैल को निकालने के लिए दातून या कोमल ब्रश का उपयोग करते हैं। जीभ को भी साफ करते हैं।

इसी प्रकार आँख, कान और नाक से भी मैल निकलाते हैं। इन्हें भी स्वच्छ बनाए रखते हैं।